नोट—इस शृंखला में गाथा 105 का प्रवचन अनुपलब्ध होने से 1971 के वर्ष के प्रवचनों से लिया गया है — प्रवचन क्रमांक 100, 101, 102।

प्रवचन-१००, श्लोक-१४१, गाथा-१०५, शुक्रवार, श्रावण कृष्ण १५, दिनांक २०-०८-१९७१

निश्चय प्रत्याख्यान अधिकार। वीतराग परिणतिरूप चारित्र, उसका यह प्रत्याख्यान अन्तर्भेद है। १४१ कलश है।

जयति समता नित्यं या योगिनामपि दुर्लभा,
निजमुखसुखवार्धिप्रस्फारपूर्णशशिप्रभा।
परम-यमिनां प्रव्रज्यास्त्रीमनःप्रिय-मैत्रिका,
मुनिवरगणस्योच्चैः सालङ्क्रिया जगतामपि।।१४१।।

क्या कहते हैं? कि आत्मा में वीतरागतारूपी समता प्रगट होना। राग तो अनादि का प्रगट होता है। पुण्य और पाप के विकल्प, वह तो विकार है, परन्तु वीतरागता धर्म का स्वरूप, वह सब शास्त्र का तात्पर्य भाव है। आत्मा में वीतरागतारूपी समता।

श्लोकार्थ : जो योगियों को भी दुर्लभ है... '**योगिनामपि दुर्लभा**' क्या आता है? दूसरे में आता है न? सेवना। सेवा तो योगियों को भी गहन है, ऐसा लोग कहते हैं। सेवा, सेवा। दुनिया की सेवा करना, वह तो योगी को दुर्लभ है—ऐसा एक पत्र में आया था। जैन के पत्र में, हों! यहाँ तो कहते हैं सेवा किसकी? पर की सेवा कर कहाँ सकता है? और पर की सेवा का भाव है, वह शुभभाव-पुण्य है, राग है, वह कहीं गहन नहीं है। एक पण्डित ने लिखा था। पत्र में आया है। 'सेवा योगिनापि गहनम्।' पण्डित था, उसने लिखा था। धूल भी गहन नहीं है। यह गहन तो योगियों को दुर्लभ वीतरागभाव कि जो वस्तु अखण्ड आनन्द प्रभु के उग्र आश्रय से प्रगट हो, उस आत्मा की सेवा से जो प्रगट हो, ऐसी वीतरागता योगियों को भी दुर्लभ है। आहाहा! समझ में आया? भीखाभाई! लोग ऐसा कहते हैं। पैसा-बैसा कुछ दिया हो, पाँच-पचास हजार और निवृत्ति ली हो, इसलिए ऐसा कि यह सेवा करते हैं, वह योगियों को भी दुर्लभ है। ऐसा।

यहाँ तो मुनि पद्मप्रभमलधारिदेव पंच महाव्रतधारी व्यवहार से थे। निश्चय से स्वरूप के धारक थे। वीतरागभाव, जिसे अन्तर भगवान निधान चिदानन्द प्रभु के अवलम्बन से, उग्र आश्रय से जिन्होंने वीतरागता प्रगट की है। यह प्रत्याख्यान और यह चारित्र है। जो योगियों को भी दुर्लभ है। सन्तों को भी अन्दर उग्ररूप से वस्तु का आश्रय लेकर

प्रत्याख्यान अर्थात् चारित्र की वीतराग परिणति प्रगट करना दुर्लभ है। पर का आश्रय छोड़कर अनादि से पर के संस्कार, पर का आश्रय, पर का अवलम्बन, यह अनादि से आदत में आ गया है। उसमें से कहते हैं कि आत्मा भगवान पूर्णानन्द प्रभु का उग्ररूप से आश्रय लेकर जो समता, वीतरागता होना, (वह) दुर्लभ है। आहाहा! यह पैसा मिलना दुर्लभ है, यह व्रत पालना दुर्लभ है, ऐसा यहाँ नहीं कहा।

मुमुक्षु : एक जगह कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा हो, वह तो स्वरूप की स्थिरता की अपेक्षा से। अन्दर स्वरूप की स्थिरता हो, उसे महाव्रत बड़े। ऐसा कहा है। महाव्रत महापुरुष पालन करते हैं। है न? पण्डितजी! महाव्रत है न, तो उसका अर्थ ऐसा करते हैं। उन्हें महापुरुषों ने पालन किया है। इसका अर्थ कि जहाँ स्वरूप की ध्रुव पर बहुत ही उग्रता के आश्रय से जो वीतरागता प्रगटी है, वहाँ आगे ऐसे पंच महाव्रत के विकल्प होते हैं। पालन की है स्वरूप की स्थिरता, परन्तु व्रत पालते हैं—ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? जो समता। समता अर्थात् वीतरागता; वीतरागता अर्थात् चारित्र की रमणता, प्रत्याख्यान—यह सब एकार्थवाचक हैं। यह सब वस्तु भगवान... आहाहा! जिसने अपनी शक्ति पर अनन्त काल से नजर नहीं की। आहाहा! महा अतीन्द्रिय आनन्द का भण्डार, अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का भण्डार, ऐसा परम स्व तत्त्व। उसका उग्ररूप से आश्रय लेना। जघन्यरूप से आश्रय लेना, वह समकित है। उग्ररूप से आश्रय लेना, उसका नाम चारित्र है। आहाहा! समझ में आया?

जो निजाभिमुख सुख के सागर में ज्वार लाने के लिए पूर्ण चन्द्र की प्रभा (समान) हैं,... आहाहा! स्वरूप के अवलम्बन से प्रगट हुई समता वीतराग निर्विकल्प दशा, वह निज अभिमुख सुख के सागर में... देखो! यह वीतरागता, स्वरूप के अवलम्बन से प्रगट होती है। सम्यग्दर्शन, वह वीतरागता है। सम्यग्ज्ञान, वह वीतरागता है और सम्यक्चारित्र, ये तीनों ही वीतरागता है। कहते हैं कि जो समता-वीतरागता चारों ही अनुयोग का तात्पर्य है। चार शास्त्र-अनुयोग हैं न, उनका तात्पर्य वीतरागता है, समभाव है, समता है। वह समता... ऐसे समता रखना, राग की मन्दता की, उस समता की यह बात नहीं है। आहाहा! जिसमें वीतरागता, वस्तु के स्वभाव में... अरे! विश्वास (आना कठिन है)।

भगवान आत्मा में पूर्ण अचल वीतरागता के स्वभाव का भगवान भण्डार है। उसमें उसका आश्रय करके उसे ध्येय बनाकर जो वीतरागता प्रगट होती है, वह निज अभिमुख सुख के सागर में... आहाहा! कहते हैं कि अपने आत्मा के सन्मुख हुआ, अभिमुख हुआ सुख और उसमें से प्रगट हुआ सुख, ऐसे सुख के सागर में। आहाहा! सम्यग्दर्शन में भी सुख की दशा है। सम्यग्दर्शन प्रथम धर्मदशा, उसमें वह अतीन्द्रिय आनन्द के आश्रय से सुख की प्रशमता-शान्ति प्रगट हुई होती है। आहाहा! समझ में आया? यह तो निजाभिमुख उग्ररूप से सुख का सागर प्रगट हुआ है, कहते हैं। पर्याय। मुनिदशा की बात है न! आहाहा! अतीन्द्रिय सागर आनन्द वह नहीं, परन्तु उसके आश्रय से, उसमें एकाग्र होकर अतीन्द्रिय आनन्द का सागर उछला है, कहते हैं। आहाहा! कहो, सेठ! वह तुम्हारा सागर नहीं। आहाहा!

सुख के सागर में ज्वार लाने के लिए... ज्वार समझते हो? बाढ़। बाढ़ आती है। आहाहा! भगवान पूर्ण सुख का सागर, अपरिमित मर्यादारहित जहाँ सुख की दशा, जहाँ सुख का स्वरूप पड़ा है। भगवान अन्तर में उसके सन्मुख होकर, आहाहा! राग और निमित्त से विमुख होकर। यह नियमसार है न! नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग। उस वस्तु के निजाभिमुख—निज अभिमुख से प्रगट हुई आनन्द और वीतरागदशा है, उसका नाम मोक्ष का मार्ग परमात्मा फरमाते हैं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा भी कहना चाहते हैं कि जो चारित्र अर्थात् समता भाव है, वह आनन्दरूप है, दुःखरूप नहीं। लोग ऐसा कहते हैं न? चारित्र तो बापू! लोहे के ग्रास हैं। दूध के दाँत से रेत... रेत समझते हो? बालू। बालू होती है न? रेत... रेत। दूध के दाँत से रेत चबाना। ऐसा चारित्र दुःख है, कठिन है। यह बात झूठी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। चारित्र तो आनन्ददायक है। उसे दुःखदायक मान (तो) तुझे वस्तु की खबर नहीं है। वह चारित्र अर्थात् पंच महाव्रत के परिणाम या नग्न की क्रिया, वह नहीं। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर छलाछल भरा हुआ तत्त्व है। उसमें डुबकी मारकर - एकाग्र होकर जो आनन्द की लहर - भरती आती है, वर्तमान किनारे / पर्याय में। आहाहा! अरे! व्रत और कष्ट सहन तो करके देखो! व्रत कैसे कठिन हैं। अरे! ऐसा नहीं है, प्रभु! तुझे खबर नहीं है। आहाहा!

वह चारित्र तो **निजाभिमुख सुख के सागर में ज्वार लाने के लिए पूर्ण चन्द्र की प्रभा (समान)...** वीतरागता है। वह चारित्रता कहो, समता कहो, वीतरागता कहो, प्रत्याख्यान कहो। आहाहा! जैसे सागर में पूर्णिमा हो, तब उसका ज्वार बहुत आता है। पूर्णिमा हो न, पूर्णिमा? पूर्णिमा का चन्द्र। बहुत ज्वार आता है, बहुत बाढ़ आती है। चन्द्र को और सागर को ऐसा निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है। जब चन्द्र पूर्णिमारूप से खिला हो, तब समुद्र भी ऐसे ज्वार में-बाढ़ में उछल जाता है। दो-दो, तीन-तीन आदमी डूबें उतना उछलता है। यहाँ तो हमने देखा है। पोरबन्दर, पोरबन्दर में नजदीक से देखा है। वहीं सामने हम उतरे हुए थे। समुद्र के किनारे उतरने का स्थान कहलाता है। क्या कहलाता है वह? टाउनहॉल? ऊपर वहाँ उतरे हुए थे, वहीं समुद्र है इस ओर। बण्डी है ऊपर। समुद्र ऊपर से वह दिखता है। लहरें उछले, जब पूर्णिमा हो। चन्द्रमा। आज तो अमावस्या है। पूर्णिमा पूर्ण महीना होता है न! अमावस्या तो अर्धमास है। महीना पूरा होता है, तब चन्द्रमा पूर्ण होता है और समुद्र उछलता है, कहते हैं। आहाहा!

इसी प्रकार समता अर्थात् भगवान आनन्द के धाम का आश्रय लेकर-उग्र आश्रय लेकर जो समता और वीतरागता आयी, उस वीतरागता-सुख का सागर, जो ज्वार आता है, वह ज्वार लाने में चन्द्रमा के समान है। आहाहा! कहो, समझ में आया? अरे! प्रभु! तेरा सुख कहीं अन्यत्र नहीं है, ऐसा कहते हैं। शरीर में नहीं, पैसे में नहीं, इज्जत में नहीं। नहीं पाप के भाव में सुख, नहीं पुण्य के भाव में सुख। वह तो दुःख है। भगवान आत्मा के आनन्द का जहाँ आश्रय लिया है और समुद्र में जैसे गोता खाकर अन्दर पड़कर जैसे मोती लावे, वैसे भगवान आत्मा अपना स्वभाव-सागर में एकाग्र होकर... आहाहा! यह बात तो कोई बात है! दशा पलटकर दिशा पलट जाना। आहाहा!

निज अभिमुख—भगवान आत्मा के सन्मुख होकर जो आनन्द प्रगट होता है, वह आनन्द प्रगट होने में ज्वार को लाने में, यह पूर्ण चन्द्र की प्रभा समान समता है। आहाहा! ऐसा कहते हैं कि चारित्र में कहो, वीतरागता में कहो या समता कहो, उसमें आनन्द है-ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अरे! हमें सहन करना पड़ता है, नंगे पैर चलना पड़ता है, गर्म पानी पीना, (केश) लोंच कराना और यह तीक्ष्ण धार जैसे व्रत पालना... अरे! भगवान! क्या कहता है? भाई! यह तो बाह्य दृष्टि है। आहाहा! शब्द भी

कैसे प्रयोग किये हैं! मानो कम पड़ते हैं। भाई ने लिखा है न? पण्डितजी ने कहीं इसमें लिखा है या कहीं लिखा है? प्रस्तावना में लिखा है। शब्द कम पड़ते हैं। पाठ है न? देखो न **'निजमुख'** ऐसा है न? **'निजमुख'**। भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द का धाम है, उसके सन्मुख। निज के सन्मुख और विकार तथा संयोग से विमुख। आहाहा! यह कोई बात है! यह कहीं बातों से बैठे ऐसा है? आहाहा! जिसमें अनन्त-अनन्त पुरुषार्थ है। ऐसी दशा है, उसे ऐसी कर डालना। निजसुख शब्द प्रयोग किया है। ऐसी जो समता, वह सुख के सागर की ज्वार लाने के लिये सागर में जैसे चन्द्रमा है, वैसे यह चन्द्रमा है। यह चन्द्रमा के समान है। शान्ति... शान्ति... शान्ति... ऐसा कहा।

जो परम संयमियों की दीक्षारूपी स्त्री के मन को प्यारी सखी है... जो वस्तु भगवान परम तत्त्व के अवलम्बन से - आश्रय से जो वीतरागता प्रगट हुई, वह वीतरागता परम संयमियों की दीक्षा / चारित्र, उसकी जो स्त्री। चारित्र दीक्षारूपी प्रव्रज्यारूपी स्त्री, उसके मन को प्रिय सहेली है। समता अर्थात् वीतरागता मुनियों को प्रिय है, ऐसा कहते हैं। राग प्रिय नहीं। आहाहा! समझ में आया? पंच महाव्रत के परिणाम वे प्रिय नहीं हैं - ऐसा इसमें कहते हैं, भाई! आहाहा! प्रिय नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया? यह तो वीतराग के घर के मण्डप हैं। समझ में आया? यह वीतरागता के घर के मण्डप में किसके गीत होंगे? राग के (गीत) होंगे? कहो। विवाह के समय तो उठाओ कहा जाता है, यह ठीक नहीं कहलाता, लो। ....कहा जाता है, भाषा भी देखो न? कहा था न?

हमारे ऐसा हुआ था न, (संवत्) १९६४ के वर्ष। १९६४-६४। हमारे फावाभाई का विवाह था। चौदह वर्ष की उम्र, मेरी अठारह की। मैं उनका अणवर हुआ था। वह सम्हालने। गहने-बहने होवे न, मूल तो वे। उसमें उसके कारण बैठाने गये खड्डे में। मैंने कहा उठाओ। उनको ऐसा हुआ कि विवाह में उठाओ नहीं कहा जाता। हम तो भगत व्यक्ति। अपने को कुछ लोक की (खबर नहीं)। कहा, उठाओ। सेठ, उठाओ। समझे न उठाओ। उठाओ नहीं कहा जाता। विवाह के प्रसंग में उठाओ नहीं कहा जाता। ले चलो, ऐसा कहा जाता है। यह भाषा है। तेडो को तुम्हारी भाषा में क्या कहते हैं? उठाओ मुर्दे को उठाओ, ऐसा कहा जाता है। अपने को कुछ खबर नहीं होती। गाँव में विवाह और बाहर में गाड़ी थी। गाड़ी में बैठाने को। यहाँ उमराला। फावाभाई थे न अपने? फावाभाई, नहीं?

सूरतवाले। मनहर है या नहीं ? गया ? गया होगा। लोगों को गांडाभाई कहे। देखो भाई ! यह भगत है। इसके शब्द मंगलिक हैं। कोई अमंगलिक मानना नहीं। गांडाभाई को हमारी छाप थी न ! छोटी उम्र से छाप थी न सब। कहा... एक का एक लड़का, भाई ! एक का एक लड़का। छोटी उम्र। चौदह वर्ष का विवाह, चौदह वर्ष। चौदह वर्ष में। पहले तो... नहीं था न, इसलिए ऐसा कि कौन जाने कैसे होगा, विवाह कर दो। यह शब्द निकला और लोगों को ऐसा हो गया, यह क्या ? शंका करना नहीं, कोई सन्देह करना नहीं। यह भगत का वाक्य है। ऐई ! सेठी ! (संवत्) १९९६ में मेरे निकट ब्रह्मचर्य लिया, लो, यहाँ। १९६४ और १९९६, कितने हुए ? बत्तीस वर्ष। कुछ हुआ नहीं। उठाओ कहा तो कुछ (हुआ नहीं) व्यर्थ में लोगों का (वहम है)। यहाँ १९९६ के बाद तो कितने वर्ष रहे ? बहुत। ब्रह्मचर्य सजोड़े से यहाँ लिया था। फिर बहुत वर्ष रहे। पश्चात् गुजर गये। फिर यह दूधीबेन गये उनके घर में महिलाएँ... दुनिया में वचन छेंक, उसके भाव का आशय क्या है, उसे समझते नहीं।

यहाँ कहते हैं, आहाहा ! मुनियों को तो वीतरागता प्रिय है। ऐई ! सम्यग्दृष्टि को भी वीतरागता प्रिय है; राग प्रिय नहीं। होता अवश्य है। आहाहा ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : सब समझने योग्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा ! एक-एक शब्द...

परम संयमियों की दीक्षारूपी स्त्री के मन को प्यारी सखी है... आहाहा ! भगवान आत्मा शान्ति से लबालब भरा हुआ। उसमें उछलकर ऐसी पर्याय प्रगट हुई, अन्दर स्वसन्मुखता होकर। ऐसी वीतरागता, ऐसा चारित्र, वह निश्चय प्रत्याख्यान। वह सन्तों को प्रिय है, वह दुःखदायक नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रव्रज्या। प्रव्रज्या, प्रव्रज्या नहीं ख्याल ? वह तो दीक्षा है। चारित्र। दीक्षा अर्थात् चारित्र कहो। स्वसन्मुख की स्थिरता। वह तो सम्यग्दर्शन प्राप्त हो, तब शुद्धात्माभिमुख परिणाम से प्राप्त होता है। वह कहीं बाहर से नहीं होता। शुद्ध भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ अन्दर, उसकी सन्मुख शुद्ध अभिमुख परिणाम। उससे सम्यक्त्व

होता है। और विशेष शुद्ध अभिमुख परिणाम से चारित्र होता है। परिपूर्ण जहाँ द्रव्य का आश्रय लिया, (वहाँ) केवलज्ञान होता है। आहाहा! चारित्र किसे कहना? यहाँ तो इसकी श्रद्धा का ठिकाना नहीं। नवतत्त्व में संवर-निर्जरा आता है न? वह संवर-निर्जरा यह चारित्र है। तो संवर-निर्जरा की दशा मुनि को कैसी होती है, तब उसे मुनिपना कहा जाता है, इसकी खबर नहीं (तो) नवतत्त्व की श्रद्धा का ठिकाना नहीं। आहाहा! पण्डितजी! यह तो बापू! नव भिन्न-भिन्न तत्त्व की अभी खबर नहीं। संवर-निर्जरा इतनी दशा होती है, तब उसे चारित्र कहा जाता है और आस्रव का इतना मन्द भाग होता है, तब उसे व्रत आदि कहा जाता है। इसे एक भी तत्त्व की भिन्न-भिन्न की वास्तविकता की खबर नहीं होती। अभिन्न एकाकार तो बाद में। समझ में आया?

जो चारित्र तो दीक्षा अर्थात् स्वरूप की स्थिरता करनेवाले, रमण करनेवाले मुनि को वह समता / वीतरागता अथवा चारित्र उनकी सखी है। प्रिय सखी है। आहाहा! वह प्रिय सखी है, ऐसा कहते हैं। (सखी को गुजराती में) बहिनपणी कहते हैं न? हिन्दी में कहते हैं या नहीं? बहिनपणी कहते हैं? बहिनपणी, यह प्रिय सखी होती है न? उसे (गुजराती में) बहिनपणी कहते हैं। हमारे यहाँ बहिनपणी कहते हैं। जैसे यह भाईबन्ध, भाई नहीं होते, भाईबन्ध। वैसे यह बहिन न हो तो बहिनपणी, ऐसा। आहाहा!

जो मुनिवरों के समूह का... आहाहा! वस्तु भगवान के आश्रय से प्रगट हुई समता-वीतरागता-निर्विकल्पता-चारित्रता, प्रत्याख्यान। वह **मुनिवरों के समूह का तथा तीन लोक का भी अतिशयरूप से आभूषण है,...** वीतराग तिलक तीन लोक में वह शोभता है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! चारित्र अर्थात् क्या? यह तो मानो यह वस्त्र छोड़ दिये और यह किया और हो गया। महाव्रत के विकल्प कुछ हों, शुद्धतारहित के। हो गया, जाओ! यह यहाँ कहेंगे १०५ में। यह समता भगवान आत्मा से प्रगट हुई। पूर्ण समता का कन्द नाथ आत्मा, उसमें प्रवेश होकर जो प्रगट हुई, ऐसी जो समता और चारित्र, प्रत्याख्यान। आहाहा! मुनिवरों के समूह को प्रिय है, आभूषण है। मुनि के समूह को वह आभूषण है। उसमें उनकी शोभा है। आहाहा! और तीन लोक का भी विशेषरूप से आभूषण है। आहाहा! धन्य! धन्य! वीतरागता द्रव्य के आश्रय से समता चारित्र प्रत्याख्यान तीन लोक का आभूषण है। जिसे सन्त धारण करते हैं, इन्द्र जिसे चाहते हैं। आहाहा! ऐसी जो

चारित्रदशा तीन लोक में भी... ऐसा। मुनिवरों को तो ठीक परन्तु तीन लोक में दूसरे सबको। आहाहा! स्वर्ग के देव भी (भावना) भाते हैं कि हम कब चारित्र अंगीकार करेंगे! वह चारित्र अर्थात् यह व्रत और नग्नपना, वह नहीं। कहते थे न? एक मारवाड़ी आया था तब। वहाँ उसे यह कहना था। चारित्र तो देव को नहीं है। यह तो महाव्रत का चारित्र मनुष्यपने में होता है। यह नग्नपना और महाव्रत मनुष्यपने में (होता है), इसलिए चारित्र अंगीकार करो। देव में चारित्र वहाँ नहीं होता, इसलिए यह चारित्र माना हुआ। अरे! यह चारित्र कैसा, यह तो अचारित्र है। आहाहा!

वह समता सदा जयवन्त है। ऐसा कहकर अपनी दशा की प्रसिद्धि करते हैं। हमारे आत्मा के आश्रय से प्रगट हुई वीतरागता, वह जयवन्त वर्तती है। उसकी जय है। आहाहा! समझ में आया? सदा जयवन्त है, ऐसा कहा है न? आहाहा! हमारा भगवान, उसे अवलम्ब कर, आश्रय करके, ध्येय बनाकर जो वीतरागता—चारित्र प्रगट हुआ है, वह वस्तु जैसे जयवन्त वर्तती है वैसे, उसके आश्रय से प्रगट हुई चारित्रपर्याय भी जयवन्त वर्तती है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग तो देखो! ओहोहो! कहो, देवीलालजी! कितनी महिमा चारित्र की!

मुमुक्षु : द्रव्यचारित्र तो है... भावचारित्र...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु द्रव्यचारित्र हो, परन्तु द्रव्यचारित्र कहा कब जाए उसे? भाव प्रगट हुआ हो तो उसे द्रव्यचारित्र कहा जाता है। आता है पहला, बात सच्ची है। इसलिए कहते हैं न, पहले आवे न? चौथे, पाँचवें में आया हो तो उसको द्रव्यचारित्र कहा जाए। नहीं तो द्रव्यचारित्र किसका कहा जाए? वह तो चारित्र के दो प्रकार है कहाँ? चारित्र एक ही है। उसका निरूपण दो प्रकार से है। अरे! भगवान! आहाहा!

गाथा-१०५

णिक्कसायस्स दान्तस्स सूरस्स ववसायिणो।
संसार-भय-भीदस्स पच्चक्खाणं सुहं हवे।।१०५।।

निःकषायस्य दान्तस्य शूरस्य व्यवसायिनः।
सन्सारभयभीतस्य प्रत्याख्यानं सुखं भवेत्।।१०५।।

निश्चयप्रत्याख्यानयोग्यजीवस्वरूपाख्यानमेतत्। सकलकषायकलङ्कपङ्कविमुक्तस्य निखिलेन्द्रियव्यापारविजयोपार्जितपरमदान्तरूपस्य अखिलपरीषहमहाभटविजयोपार्जित-निजशूरगुणस्य निश्चयपरमतपश्चरणनिरतशुद्धभावस्य सन्सारदुःखभीतस्य व्यवहारेण चतुरा-हारविवर्जनप्रत्याख्यानम्। किञ्च पुनः व्यवहारप्रत्याख्यानं कुदृष्टेरपि पुरुषस्य चारित्रमोहोदय-हेतुभूतद्रव्यभावकर्मक्षयोपशमेन क्वचित् कदाचित् सम्भवति। अत एव निश्चयप्रत्याख्यानं हितं अत्यासन्नभव्यजीवानां; यतः स्वर्णनामधेयधरस्य पाषाणस्योपादेयत्वं न तथान्ध-पाषाणस्येति। ततः सन्सारशरीरभोगनिर्वेगता निश्चयप्रत्याख्यानस्य कारणं, पुनर्भाविकाले सम्भाविनां निखिलमोहरागद्वेषादिविविधविभावानां परिहारः परमार्थप्रत्याख्यानं, अथवा-नागतकालोद्भवविविधान्तर्जल्पपरित्यागः शुद्धनिश्चयप्रत्याख्यानं इति।

जो शूर एवं दान्त है, अकषाय उद्यमवान है।
भव-भीरु है, होता उसे ही सुखद प्रत्याख्यान है॥१०५॥

अन्वयार्थ : [निःकषायस्य] जो निःकषाय है, [दान्तस्य] [१]दान्त है, [शूरस्य] शूरवीर है, [व्यवसायिनः] व्यवसायी (-शुद्धता के प्रति उद्यमवन्त) है और [संसार भयभीतस्य] संसार से भयभीत है, उसे [सुखं प्रत्याख्यानं] सुखमय प्रत्याख्यान (अर्थात् निश्चयप्रत्याख्यान) [भवेत्] होता है।

टीका : जो जीव निश्चयप्रत्याख्यान के योग्य हो, ऐसे जीव के स्वरूप का यह कथन है।

१. दान्त=जिसने इन्द्रियों का दमन किया हो ऐसा; जिसने इन्द्रियों को वश किया हो ऐसा; संयमी।

जो समस्त कषायकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त है, सर्व इन्द्रियों के व्यापार पर विजय प्राप्त कर लेने से जिसने परम दान्तरूपता प्राप्त की है, सकल परीषहरूपी महा सुभटों को जीत लेने से जिसने निज शूरगुण प्राप्त किया है, निश्चय-परम-तपश्चरण में [१]निरत ऐसा शुद्धभाव जिसे वर्तता है, तथा जो संसारदुःख से भयभीत है, उसे (यथोचित शुद्धता सहित) व्यवहार से चार आहार के त्यागरूप प्रत्याख्यान है। परन्तु (शुद्धतारहित) व्यवहार-प्रत्याख्यान तो कुदृष्टि (-मिथ्यात्वी) पुरुष को भी चारित्रमोह के उदय के हेतुभूत द्रव्यकर्म के और भावकर्म के क्षयोपशम द्वारा क्वचित् कदाचित् सम्भवित है। इसीलिए निश्चयप्रत्याख्यान अति-आसन्नभव्य जीवों को हितरूप है; क्योंकि जिस प्रकार [२]सुवर्णपाषाण नामक पाषाण उपादेय है, उसी प्रकार अन्धपाषाण नहीं है। इसलिए (यथोचित् शुद्धता सहित) संसार तथा शरीर सम्बन्धी भोग की निर्वेगता निश्चयप्रत्याख्यान का कारण है और भविष्य काल में होनेवाले समस्त मोह-राग-द्वेषादि विविध विभावों का परिहार, वह परमार्थप्रत्याख्यान है अथवा अनागत काल में उत्पन्न होनेवाले विविध अन्तर्जल्पों का (-विकल्पों का) परित्याग वह शुद्ध निश्चयप्रत्याख्यान है।

गाथा -१०५ पर प्रवचन

१०५ (गाथा)।

णिक्कसायस्स दान्तस्स सूरस्स ववसायिणो।
संसार-भय-भीदस्स पच्चक्खाणं सुहं हवे।।१०५।।

जो शूर एवं दान्त है, अकषाय उद्यमवान है।
भव-भीरु है, होता उसे ही सुखद प्रत्याख्यान है॥१०५॥

आहाहा! भाषा देखो न! अज्ञानी का प्रत्याख्यान दुःखमय होता है, ऐसा कहते हैं। आत्मा के शुद्धता के भान और अनुभव बिना जो कुछ पंच महाव्रत को ले, वह सब

१. निरत=रत; तत्पर; परायण; लीन।
२. जिस पाषाण में सुवर्ण होता है, उसे सुवर्णपाषाण कहते हैं और जिसमें सुवर्ण नहीं होता, उसे अन्धपाषाण कहते हैं।

दु:खरूप है-ऐसा बतलाना है। इसलिए तो यह पाठ है। पाठ है न? **'सुहं हवे'** उसके सामने रखा। उसको दु:खम्। आहाहा!

टीका : जो जीव निश्चयप्रत्याख्यान के योग्य हो... देखो! जो आत्मा अपने स्वरूप का अवलम्बन कर वीतरागता प्रगट होने के योग्य हो, **ऐसे जीव के स्वरूप का यह कथन है।**

जो समस्त कषायकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त है,... कषायकलंकरूपी कादव / कीचड़। कषायकलंकरूपी कादव। देखो! कादव शब्द है न इसमें? हिन्दी में क्या है? कीचड़ है। हिन्दी में है। बराबर है। यह पंच महाव्रत के परिणाम को कषायकलंक कादव कहा है। सम्यग्दृष्टि को यह कादव है। राग है न? आहाहा! दु:ख से लिप्त भाव है। आहाहा!

कषायकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त है,... चारित्र जिसे वर्तता है, ऐसा आगे कहना है न? ऐसी शुद्धता वर्तती है, उसे व्यवहार होता है-ऐसा कहते हैं।

सर्व इन्द्रियों के व्यापार पर विजय प्राप्त कर लेने से जिसने परम दान्तरूपता प्राप्त की है,... इन्द्रियों का दमन किया हो, इन्द्रियों को वश किया हो, ऐसा। है न नीचे? इन्द्रियों के विषय से विरक्त हुआ है। अतीन्द्रिय आनन्द के धाम में पहुँच गया है। अतीन्द्रिय सुख को पहुँच गया है, ऐसा कहते हैं। ऐसे मुनि, उनका यह चारित्र अथवा शुद्धभाव। **सकल परीषहरूपी महा सुभटों को जीत लेने से...** परीषहरूपी महा सुभट। आहाहा! जिसने जीता है, आनन्द से शान्ति से। वीतरागभाव से जिसने परीषह जीते हैं।

जिसने निज शूरगुण प्राप्त किया है,... यह निज शूरगुण प्राप्त किया है। शरीर की शूरता और बल की वह बात यहाँ नहीं है। विकल्प का बल, राग का वह नहीं। निज शूरगुण। आत्मा की वीरता गुण-पुरुषार्थ गुण जिसने प्राप्त किया है। शूरवीर है। स्वरूप में रमने के लिये वीर है। राग की रमत जिसने छोड़ दी है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो मुनि की बात है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह मुनि का भाव है, वह समकित में भी है न आंशिक? आंशिक है या नहीं उसे? उसे मुनिपना क्या है, इसकी श्रद्धा करनी है या नहीं? और उसे

भावना होती है या नहीं ? या मुनि के लिये है, हमारे कुछ नहीं है ? सेठ ! हमारे तो कुछ नहीं। बस यह धन्धा-बन्धा करना। समकिती को भावना होती है। आहाहा ! अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा- आता है न ? 'कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब' देखो ! गृहस्थाश्रम में है।

कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब,
सर्व भाव से उदासीन्य वृत्ति करि।

देखो ! समकिती की यह भावना होती है।

सर्व भाव से उदासीन्य वृत्ति करि।
मात्र देह वह संयम हेतु होय जब॥

श्रीमद् को लाखों का मोती का व्यापार था, ऐसा लोग कहे। उन्हें व्यापार था आत्मा का। अरे... अरे... ! गजब। समझ में आया ? लोगों को तत्त्व क्या है, (इसकी खबर नहीं होती)। 'सर्व भाव से उदासीन्य वृत्ति करि। मात्र देह वह संयम हेतु होय जब।' इसका नाम संयम। इसकी भावना समकिती भी भाता है। उसे भी जानकर, पहिचानकर भावना भाता है। हमारे कुछ नहीं, उन्हें है, ऐसा नहीं। विकासभाई ! मुक्ति चाहिए या नहीं ? मुक्ति, वह अनन्त आनन्द का धाम। जिसे सुख चाहिए, वह सुख तो मुक्ति में है और मुक्ति का कारण तो चारित्र है और चारित्र, सम्यग्दर्शन-ज्ञान होवे तो होता है। आहाहा ! समझ में आया ? देखो न ! कितनी भावना भायी है ! धन्धा था परन्तु संयम की भावना होवे न ! छहढाला में आता है न ? 'लेश न संयम, पै सुरनाथ जजै हैं।' तथापि वह चारित्र की भावना रखता है, यह आता है न ? उसमें काव्य आता है न। छहढाला में ऐसी एक कड़ी आती है। सब कहीं याद रहता है ? संयम धारण (कर) नहीं सकता परन्तु संयम धारण की छटाछटी। दौलतरामजी (भजन में कहते हैं)। यह आता है न ? संयम धारण नहीं कर सकता परन्तु संयम कैसे लूँ ? कैसे लूँ ? उसकी छटापटी लगी होती है। ऐ... सेठ ! ऐसे के ऐसे बीड़ी के धन्धे में पड़ा रहना और डालचन्द का मान मिले, बापूजी... बापूजी... (करे)। ऐसे होशियार लड़के पके और फिर बापूजी। अर्थात् और कैसे होंगे ?

मुमुक्षु : वे होशियार हुए तो हमें निवृत्ति मिली न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह झूठ बात है, ऐसा कहते हैं। पर के साथ क्या सम्बन्ध है ? आहाहा! और यह निवृत्ति क्या ? यह बाहर से निकले इतना। निवृत्ति तो राग से निवृत्ति होकर स्वरूप में जाए, उसे निवृत्ति कहते हैं। आहाहा! बाहर से निवृत्त हो, फिर वृद्ध होवे तो क्या करे ? वह करते हों तो फिर छोड़ो अपने। अपन करें, वह करते हैं। इतना सम्मत तो उसे आनन्द है, अनुमोदना है। हमारी ओर से वह करते हैं, भले। हमारे जो करना है, वह तो हम कर चुके। अब यह करते हैं, वह हम ही करते हैं। उसे मजा मानते हैं। यह सब पाप की अनुमोदना है। सेठ! यह तो ऐसा है। आहाहा!

कहते हैं **जिसने निज शूरगुण प्राप्त किया है,...** आहाहा! शरीर का बल नहीं, पुण्य का बल नहीं। धर्मात्मा ने तो आत्मा के निज शूरगुण को प्राप्त किया है। आहाहा! जो वीर्य स्वरूप का है, वह शुद्धता को रचे, ऐसा वीर्य प्रगट किया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? उसे वीरता कहते हैं। बाकी तो कायरता है। आहाहा! **निज शूरगुण प्राप्त किया है, निश्चय-परम-तपश्चरण में निरत ऐसा शुद्धभाव जिसे वर्तता है,...** देखो! **निश्चय-परम-तपश्चरण में निरत...** साधुपने में। ऐसा शुद्धभाव मुनि को वर्तता है। लो, यह मुनि को शुद्धभाव होता है या नहीं ? आठवें में शुद्ध होता है, (ऐसा आजकल) कहते हैं। आहाहा! यह तो छठे की बात यहाँ तो करते हैं। जिसे शुद्धभाव वर्तता है, उसे व्यवहार प्रत्याख्यान इस त्याग का होता है, ऐसा यहाँ कहना है। आहाहा! समझ में आया ? यह तो भाई ने कहा है न! ऐसा कहते हैं। पद्मनन्दि ने कहा है न ? कहा है क्या ? सुन न। यह **'पच्चक्खाणं सुहं हवे'** इसका न्याय निकाला है। ऐसा जो आत्मा, जिसे पुण्य-पाप के रागरहित शुद्धभाव वर्तता है। उसकी भूमिका प्रमाण में चैतन्य के आनन्द का पवित्र भाव जिसे वर्तता है।

तथा जो संसारदुःख से भयभीत है,... चार गति के दुःख के समुद्र में पड़ना, इसका भय है। आहाहा! अरे! चौरासी लाख के अवतार। कहीं कोई शरण नहीं। निराधार चार गति में भटकना। आहाहा! धर्मी को इसका भय होता है। समझ में आया ? संसारदुःख से। संसारदुःख कहा। चारों गति के भव। देव भी संसारदुःख है। आहाहा! देव का भव भी संसारदुख है। यह अरबोंपति के सेठिया के भव, वह संसारदुःख है। कहो, सेठ! देखो, इसमें लिखा। संसारदुःख। ऐसा नहीं कहा कि अमुक का नारकी का दुःख या पशु का दुःख और देव का सुख। चारों ही गति के दुःख, (ऐसा कहा है)। आहाहा! ये सेठिया भी

कषाय की अग्नि के अंगारों में जल रहे हैं, सुलग रहे हैं, जल रहे हैं। पोपटभाई! लालिमायुक्त शरीर लगे। बँगले छह-छह लाख के बनाये, चालीस-चालीस लाख के बँगले। आहाहा! देव के बँगले में वह देव दुःखी है। आहाहा! जिसे स्व अवलम्बी तत्त्व प्रगट नहीं हुआ, पर अवलम्बन में ही विकल्पों की जाल में गुँथ गये हैं। ऐसे संसार का जिसे डर है। भवभय से भयभीत हैं। आहाहा! भवभय से डरे हैं। भव नहीं, हों! आहाहा! समकिती भवभय से भयभीत हैं। आहाहा!

जैसे सिंह को देखकर जवान व्यक्ति भागता है... वढ़वाण में, नहीं। लड़का मर गया। नहीं? आपटा का था। आपटा आता है न? ट्रैक्टर में... होता है। टीमर, बीड़ी का टीमर, छोटे पन्ने आते हैं न? छोटे। वे बड़े पन्ने। यह तो सब हमारे दुकान में थे न। सब देखा है, दुकान में सब रखा था। दुकान में धन्धा था। आपटा के पत्ते और टीमर का। दोनों की बीड़ी बनती है। उस लड़के को उसके पिता ने वढ़वाण भेजा। भाई! तू अब जा न। विवाहित, विवाह किया हुआ। तीन लोग साथ में भेजे। जंगल में आपटा के पत्तों का बड़ा ढ़ेर था। बीड़ियाँ आती हैं न? आपटा। आपटा को तुम्हारे क्या कहते हैं? वे छोटे पत्ते। हमारे यहाँ आपटा कहते हैं और टीमरू। एक-एक पत्ते की बीड़ी होती है, उसे टीमरू कहते हैं और वे दो-तीन पत्ते डाले। एक पत्ते को दूसरा करे और फिर तीसरा करे। छोटे-छोटे होते हैं न, इसके लिये लड़के को भेजा, हों! बड़ा ढ़ेर पड़ा हुआ था। तीन लोग साथ में रखे। उसमें ऐसे देखा सिंह। ढ़ेर के पीछे सिंह। सिंह - शेर। ऐसी चिल्लाहट मचायी। तुम पहिचानते होंगे। नहीं? वढ़वाण, पीछे रहते थे। हम वहाँ इतने में थे, उस समय में। लड़का भागा, भाई! बबूल पर चढ़ने। तीन लोग साथ में। लकड़ी रखी। क्या करे लकड़ी। तीनों चढ़ गये बबूल पर। सिंह आया इसलिए। वह चढ़ने गया वहाँ बबूल की लकड़ी कपड़े में उलझ गयी। चढ़ नहीं सका ऐसे कपड़ा उलझ गया। वहाँ सिंह आया, वे तीनों रखवाले थे, वे देखते थे। वह खाता था। रखवाले थे, वे ऊपर से देखते थे। नीचे सेठ का लड़का। कड़ा सोने का। सोने का कड़ा होता है न? क्या कहते हैं? सोने का कड़ा कहते हैं न? वह अकेला पृथक् कर डाला और उसे पूरा खा गया। फिर नीचे उतरे। वह सिंह चला गया। आहाहा! ऐसा संसार। उस संयोग के कारण दुःख है, ऐसा नहीं है। यह आकुलता है, वह दुःख है। इस संसार का ज्ञानी को आकुलता से भय वर्तता है। आहाहा! अरे! चौरासी के अवतार।

कहते हैं **संसारदुःख से भयभीत है,...** आहाहा! **उसे (यथोचित शुद्धता सहित)...** अब लेते हैं, देखो! देखो! यह शुद्धता छठे सहित की बात है, भाई! छठे की बात है। कोई कहे छठे गुणस्थान में शुद्धता नहीं होती। यह क्या कहते हैं? अरे! चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन-ज्ञान की शुद्धता है। स्वरूपाचरण, वह भी शुद्धता है। आहाहा! पाँचवें गुणस्थान में भी शुद्धता विशेष बढ़ गयी है। छठवें में विशेष शुद्धता है। ऐसी शुद्धतावाला मुनि। अब देखो, न्याय तो कितना दिया है! व्यवहार से चार आहार के त्यागरूप प्रत्याख्यान है। व्यवहार। आहार करके चार आहार का त्याग, वह व्यवहार है परन्तु ऐसी शुद्धता सहित होवे उसे। आहाहा! समझ में आया? ऐसी शुद्धता भगवान आत्मा की, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धता प्रगट हुए बिना अकेले चार आहार का त्याग करे, वह व्यवहार प्रत्याख्यान भी नहीं है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! कितनी स्पष्ट बात की है! ऐसी यथोचित। छठी भूमिका के योग्य जो शुद्धता, सम्यग्ज्ञान, चारित्र, दर्शन-चारित्र की जो शुद्धता। रागरहित वीतरागता प्रगट हुई है, वह चारित्र और वह प्रत्याख्यान है। उसे आहार करके चार आहार का त्याग वह व्यवहार प्रत्याख्यान है। वह विकल्प है। समझ में आया? निश्चय और व्यवहार के साथ में हो, ऐसा कहते हैं। निश्चय शुद्धता न हो और व्यवहार प्रत्याख्यान हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : छठवें तक तो अकेला व्यवहार होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला व्यवहार कभी नहीं होता। अकेला निश्चय होता है। केवली हो गये उन्हें। परन्तु अकेला व्यवहार साधक को नहीं हो सकता। अज्ञानी को व्यवहार, वह व्यवहार नहीं है। निश्चयरहित व्यवहार कैसा? समझ में आया? व्यवहार से चार प्रकार के आहार के त्यागरूप प्रत्याख्यान है।

परन्तु (शुद्धतारहित)... सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति अन्दर प्रगट नहीं हुई। **(शुद्धतारहित) व्यवहार-प्रत्याख्यान तो...** मिथ्यादृष्टि को होता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? जहाँ राग का भी कर्तव्य नहीं और स्वरूप के कर्तव्य की दशा की स्थिरता प्रगट हुई है, उसे व्यवहार प्रत्याख्यान कहने में आता है। विकल्प उठे उसे। परन्तु इस शुद्धतारहित। जिसने स्व भगवान का आश्रय नहीं लिया और अवलम्बनरहित पवित्रता जिसे प्रगट नहीं हुई, वह पवित्रतारहित जो व्यवहार लेकर बैठे, वह मिथ्यात्वी **कुदृष्टि**

(-मिथ्यात्वी) पुरुष को भी चारित्रमोह के उदय के हेतुभूत द्रव्यकर्म के और भावकर्म के क्षयोपशम... अर्थात् इतना पुरुषार्थ है न, ऐसा। राग की मन्दता की है, इतना क्षयोपशम। यह वास्तविक क्षयोपशम नहीं है। द्रव्य क्षयोपशम। यह क्या कहा? भाव क्षयोपशम नहीं। इसमें से सब निकालते हैं न? सामनेवाले श्वेताम्बर और वे। हमारे राग की मन्दता की क्रिया, वह क्षयोपशमभाव है। वह करते-करते क्षायिक होगा, ऐसा कहते हैं। मिथ्या बात है। उदयभाव है परन्तु मिथ्यादृष्टि ने जरा राग में पुरुषार्थ से मन्द किया है, मन्द किया है, इसलिए उसे जरा क्षयोपशम कहने में आता है।

मुमुक्षु : वास्तविक नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वास्तविक नहीं। पंचास्तिकाय में ऐसा अधिकार आता है। समझ में आया? उसे तो वास्तव में तो **चारित्रमोह के उदय के हेतुभूत...** ऐसा है। द्रव्यकर्म और भावकर्म। इसका कुछ पुरुषार्थ है न इतना। मिथ्यादृष्टि है, अज्ञानी है, शुद्धता के अनुभवरहित है। उसका इस राग की मन्दता का प्रत्याख्यान व्यवहार से कहने में आता है। क्षयोपशम है, ऐसा कहा। **क्वचित् कदाचित् सम्भवित है।** किसी समय किसी को ऐसा होता है। नौवें ग्रैवेयक गया, तब ऐसा था। व्यवहार प्रत्याख्यान। समझ में आया?

यह तो हमारे बड़ी चर्चा हुई थी। राणपुर। कौन सी चर्चा? (संवत्) १९८०। ८० का वर्ष। १९७९ का चातुर्मास लींबडी था। हमारा था बोटाद। दोनों राणपुर इकट्ठे हुए। १९८० के वर्ष। ४७ वर्ष हुए। तब प्रश्न चला था। मूलचन्दजी थे और यह जैचन्दजी (थे)। दोनों के बीच नीचे चर्चा चलती थी। मैं ऊपर था। राणपुर, मंजिल है न? नौवें ग्रैवेयक मिथ्यादृष्टि गया, इतना चारित्र का क्षयोपशम है, इतना उस पुरुषार्थ का क्षयोपशम है - ऐसा कहते थे। भाई! उन्हें यह कुछ ऐसी खबर नहीं थी परन्तु उन्हें... है न? भेद भंग में आता है। वे लोग मानते हैं। श्वेताम्बर तो वही मानते हैं। हमारा व्यवहार करते हैं भले, वह व्यवहार क्षयोपशमभाव से है। ऐसा करने से निश्चय होगा। व्यवहार, वह उदयभाव है। निश्चय से तो उदयभाव है। व्यवहार से जरा राग की मन्दता का पुरुषार्थ है, इसलिए क्षयोपशम कहा है, परन्तु वह कुछ संवर-निर्जरा नहीं है। अकेला बन्ध का ही कारण है। आहाहा! यह प्रश्न तब चला था। फिर मैं नीचे उतरा, तब यह बात चलती थी। मुझसे कहा, यह? मैंने कहा, नहीं। अनन्त बार गया, वह क्षयोपशम नहीं है परन्तु उदयभाव है। ऐई!

सैंतालीस वर्ष पहले, हों! पचास में तीन कम। यह क्षयोपशमभाव नहीं। ऐ... ! भीखाभाई!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र का क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु : ...कर्म का क्षयोपशम हो, इसमें क्षयोपशम कैसे कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें क्षयोपशम यह तो कहा न, मन्द किया न! राग की मन्दता का वीर्य है, इतनी अपेक्षा से कहते हैं। कहा, दो-तीन बार कहा। ख्याल तो होता है न, यह क्या कहना है। यह तो हमारे पचास वर्ष से चलता था। यह कोई नया नहीं है। समझ में आया ? ऐ.. पोपटभाई! तुम सब अभी नये आये। उदयभाव है, परन्तु तीव्र की अपेक्षा से मन्द को क्षयोपशम द्रव्यनिक्षेप से कहा है; भावनिक्षेप से नहीं - ऐसा कहा था। ऐई! वस्तु तो ऐसी है। भावनिक्षेप से नहीं। अनुयोग का, ऐसा अनुयोग द्वार में पाठ है। अनउपयोग वह द्रव्य है। जिसमें भाव उपयोग प्रगट नहीं हुआ, वह सब द्रव्य है। शुद्ध उपयोग के बिना भाव नहीं हो सकता। भावनिक्षेप। यह कदाचित् होता है। लो। अब इसकी विशेष बात है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)